बढ़ते कदम : परमानन्द की ओर

लेखिका

विद्वत्‌रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

बी.ए.ऑनर्स, एम.ए., पी.एच.डी. (स्वर्णपदक प्राप्त)

मो. 09321295265 / Email: dpptmumbai@gmail.com

मुंबई (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर – 302015

फोन : (0141) 2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

बढ़ते कदम : परमानन्द की ओर : विद्वत्‌रत्न डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

● प्रथम संस्करण : 2 हजार
(2 अक्टूबर, 2022)
गाँधी जयंती

● E-book प्रथम संस्करण
(25 मई, 2022)

मूल्य : **आठ रुपये**

ISBN No. 978-93-91136-23-9

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स,
ए-4, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर
जयपुर

विषय-सूची

1.	परमानन्द का स्वरूप	1
2.	ध्यान	4
3.	परम ध्यान	6
4.	परम ध्यान से पूर्व की ध्यान अवस्था	8
5.	परम ध्यान के पश्चात्‌ की अवस्था	9
6.	परम ध्यानी जीव की प्रवृत्ति	13
7.	अनुभूति का स्वरूप	17

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने में 2100/- रु. श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई द्वारा सधन्यवाद प्राप्त हुए।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'बढ़ते कदम परमानन्द की ओर' की लेखिका डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया बचपन से ही प्रतिभाशाली रही हैं। विद्वत्ता की दृष्टि से वे पिताश्री डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल के पदचिन्हों पर ही चल रही हैं। उनके द्वारा अभी तक छोटी-बड़ी 54 पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। जिनकी सूची आगे प्रकाशित की गई है।

साथ-ही-साथ आपने जैन सिद्धान्तों पर आधारित अनेक 'गेम्स' भी बनाए हैं, जिनके खेलने के नियम भी जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराते हैं। इन 'गेम्स' की विशेषता यह है कि इनको खेलने से बच्चों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ अहिंसात्मक आचरण की प्रवृत्ति भी सहज विकसित हो जाती है। इनमें जीत हिंसात्मक कार्य मार-पीट से नहीं, ज्ञान-ध्यान से हासिल की जाती है। बच्चों को ज्ञान-ध्यान करने की प्रेरणा मिलती है।

आपने 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार एक समालोचनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। आपने अपने शोध ग्रन्थ में शोध समीकरणों (rules and regulations) को ध्यान में रखते हुए आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों और टीकाकारों का सर्वांगीण (सम्पूर्ण) विवेचन सरल-सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है, जो कि विद्वत्जन और बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ जनसामान्य को भी अपनी ओर आकृष्ट (attract) करता है।

आपके द्वारा लिखी गई बाल पुस्तकें भी अद्यावधि (अब तक) जैन समाज में प्रचलित अन्य पाठ्यपुस्तकों से भिन्न शैली, रंगीन चित्रमय प्रस्तुति एवं मूल तत्वज्ञान के समावेश के कारण अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं।

आपकी सभी कृतियाँ अध्यात्मरस से सराबोर और भेदज्ञान से ओतप्रोत हैं। आप विभिन्न आयुवर्ग को ध्यान में रखकर भिन्न-भिन्न शैली में अध्यात्म को सरल भाषा में जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास कर रही हैं।

'आनंद' की चाहत सभी को होती है। अपनी बुद्धि के अनुसार उसे पाने का प्रयास सभी करते हैं, पर वास्तविक आनंद क्या है? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? आदि अनेक सवालों के जवाब हमें इस पुस्तक में मिलेंगे। सभी आनंद के सही स्वरूप को पहचानकर उसकी प्राप्ति करें – इसी भावना से प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। शीघ्र प्रकाशन व्यवस्था के लिए डॉ. अखिल बंसलजी का बहुत आभार है।

–परमात्मप्रकाश भारिल्ल
कार्यकारी महामंत्री

अपनी बात

परम आनन्द की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है – परम ध्यान।

जब हमारे कदम परमध्यान की दिशा में बढ़ते हैं, तब ही हम परमानन्द की प्राप्ति की ओर अग्रसर होते हैं।

परमानन्द की प्राप्ति का प्रयास करते समय, परम ध्यान का स्वरूप समझते समय अनेकों प्रश्न हमारे मन–मस्तिष्क में उठते हैं। जैसे– क्या हम भी परमध्यान कर सकते हैं या यह मुनियों का ही कार्य है? क्या ध्यान और परमध्यान पर्यायवाची हैं? यदि नहीं, तो क्या अंतर है उनमें? ध्यान के पूर्व की अवस्था क्या होती है? कितने काल तक रह सकता है परमध्यान? परमानन्द का पान कब–कब और कैसे–कैसे होता है?

जब हम इन सबका सही स्वरूप समझेंगे तब ही परमानन्द की प्राप्ति का सहज पुरुषार्थ संभव है। मेरे मन में भी ऐसे अनेक शंकाएँ–आशाएँ वर्षों से उठती रहीं हैं। उनके जो समाधान मुझे मिले वे सब आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। आशा है आप सभी इनसे लाभान्वित होंगे।

इसी भावना के साथ... **–डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया**

हाल ही में अनेक छात्रों के अनुरोध के कारण और जिनवाणी की प्रभावना हेतु डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया अनेक व्यावहारिक विषयों को आधार बनाकर अत्यंत सरल और सटीक भाषा में जिनवाणी का मर्म समझाने हेतु अपने सोशल मीडिया अकाउंट का अवलंबन लिया है।

उनके द्वारा लिखे गए साहित्य का लाभ लेने हेतु नीचे दिए गए उनके सोशल मीडिया एकाउंट्स को फॉलो करें :

Facebook : https://www.facebook.com/d.shuddhatmprabha.taraiya
Instagram : https://www.instagram.com/shuddhatmprabha
Twitter : https://twitter.com/DrTaraiya
LinkedIn : https://www.linkedin.com/in/dr-shuddhatmprabha-taraiya-49b2b3212

× × × × ×

परमागम ऑनर्स के अधिक जानकारी हेतु नीचे दिए गए वेबसाइट या फ़ोन नंबर पर contact करें :

www.practicaljainism.com श्री अविनाश टड़ैया : 9221225264

बढ़ते कदम : परमानन्द की ओर

इस संसार में ऐसा कौन है जो परमानन्द न चाहता हो? यहाँ प्रश्न चाहत का नहीं है, सवाल है किसे प्राप्त होता है परमानन्द? कैसे प्राप्त होता है परमानन्द? जीवन भर जिस आनंद के पीछे हम भागते हैं, क्या वही है परमानन्द? नहीं, तो क्या है परमानन्द? क्या कोई ऐसा उदाहरण है जिसने परमानन्द प्राप्त किया हो? क्या विशेषता है परमानन्द की? क्या परमानन्द का आरम्भ व पूर्णता एक साथ हो सकती है? क्या हम पूर्ण परमानन्द प्राप्त कर सकते हैं? क्या हम परमानन्द का स्वाद चख सकते हैं?

जी हाँ! हम परमानन्द का स्वाद चख सकते हैं; पर पूर्णता और उसकी हमेशा के लिए (कभी समाप्त न होने वाली) प्राप्ति अभी सम्भव नहीं है और परमानन्द का आरंभ व पूर्णता की प्राप्ति भी एक साथ सम्भव नहीं है।

सभी भगवान परमानन्द में मग्न रहते हैं। उन्हें पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति हो गई है। ऐसा परमानन्द जिसका आदि है, आरंभ है, पर अंत नहीं। तो आइये, विचार करते हैं अब उसी परमानन्द के स्वरूप पर।

परमानन्द का स्वरूप

परमानन्द पद दो पदों से मिलकर बना है – परम + आनंद

परम अर्थात् उत्कृष्ट और आनंद से तो हम सभी परिचित ही हैं – ऐसा कोई कह सकता है।

जी नहीं, जिस आनंद से मिथ्यादृष्टि संसारी सभी परिचित हैं,

वह आनंद परम आनंद नहीं है। मिथ्यादृष्टि परिचित हैं इन्द्रियों से होने वाले आनंद से और परम आनंद इन्द्रियों के आधीन नहीं, पराधीन नहीं, स्वाधीन है।

इन्द्रिय आनंद छूने से, चखने से, सूँघने से, देखने से और सुनने से होने वाला आनंद है; जब कि परमानन्द इन सब से पार ज्ञान से होने वाला आनंद है। इन्द्रियों के सहयोग के बिना होने से ही इसे अतीन्द्रिय भी कहते हैं।

जैसे- हम शरीर द्वारा छू कर ठंडा-गरम, कड़ा-नरम आदि में खुशी महसूस करते हैं। जीभ द्वारा चख कर खट्टा-मीठा, कड़वा-चरपरा आदि में खुश होते हैं। घ्राण इन्द्रिय (नाक) द्वारा सूँघ कर, आँख द्वारा देख कर और कान द्वारा सुन कर भिन्न-भिन्न प्रकार से आनंद अनुभव करते रहते हैं, खुश होते रहते हैं; पर हमारा यह आनंद, यह खुशी क्षणिक होती है, पल भर में नष्ट हो जाती है और कभी-कभी तो कष्ट दे कर भी जाती है। कष्ट तो कोई भी प्राणी पल भर को नहीं चाहता। हम चाहते हैं - सुख, आनंद; ऐसा आनंद जो कभी समाप्त न हो, हमेशा रहे।

अतीन्द्रिय आनंद जब एक बार पूर्णता को प्राप्त हो जाता है तो सदा रहता है, कभी नष्ट नहीं होता। इसीलिए तो इसे अनंत आनंद भी कहते हैं। जिसका कोई अंत नहीं ऐसा आनंद, अविनाशी आनंद!

इसके जैसा कोई आनंद नहीं। यह उत्कृष्ट आनंद है, सर्वोत्कृष्ट आनंद है। इसमें आकुलता का अंश भी नहीं होता।

जो इनको परिपूर्ण रूप से पा लेता है, उसे प्राकृतिक आपदायें प्रभावित नहीं करती। शारीरिक कष्ट नहीं होते, मानसिक कष्ट भी नहीं

होते। आहार-निहार, सर्दी-गर्मी के कष्टों से रहित वे शीघ्र परम पद में स्थित हो जाते हैं, शरीर रहित हो जाते हैं और निरंतर परमानन्द का रसपान करते रहते हैं, परमानन्द में मग्न रहते हैं।

जो जीव इस आनंद का स्वाद चख लेते हैं, उनकी दृष्टि सम्यक् हो जाती है; अतः वे **सम्यग्दृष्टि** कहलाते हैं। जब तक जीव इस आनंद की अनुभूति नहीं कर पाते, तब तक मिथ्यादृष्टि रहते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव पहली बार परमानन्द का मात्र जघन्य अंर्तमुहुर्त ही रस पान कर पाते हैं।

परमानन्द की प्राप्ति ध्यान अवस्था में ही आरंभ होती है।

प्रश्न 1. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए अनिवार्य क्या है?
उत्तर: आत्मानुभूति
प्रश्न 2. आत्मानुभूति के लिए क्या करना चाहिए?
उत्तर: सर्वप्रथम आत्मा के संबंध में विस्तार से जानना चाहिए।
प्रश्न 3. आत्मा के बारे में कैसे जाने? कहाँ से जाने?
उत्तर: शास्त्रों को पढ़कर या गुरु मुख से सुनकर जानना चाहिए।
प्रश्न 4. आत्मा के बारे में क्या जानना चाहिए?
उत्तर: आत्मा क्या है? क्या नहीं है? किससे भिन्न है? क्या करता है? क्या नहीं करता है? जैसे- पर द्रव्य से भिन्न, पर्याय से भिन्न, राग से भिन्न, 29 प्रकार के भावों से भिन्न जानना। आत्मा के अनंत गुण, असंख्यात प्रदेश, 47 शक्तियाँ, 47 नय आदि के बारे में जानना चाहिए।
प्रश्न 5. आत्मानुभव कैसे होगा?
उत्तर: 'पर' की सत्ता मुझमें नहीं, 'पर' मैं नहीं , मैं आत्मा हूँ - ऐसा दृढ़ ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान के साथ में 'ये ही मैं हूँ' - ऐसा दृढ़ श्रद्धान होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में हमारी श्रद्धा न पलटे। 'पर' के साथ अपनत्व का श्रद्धान छोड़कर 'स्व' के साथ अपनत्व का श्रद्धान करना चाहिए। 'पर' में परत्व, 'स्व में' स्वत्व (अपनत्व) का दृढ़ श्रद्धान होने पर रुचि का जोर हो तो आत्मानुभव होगा ही होगा।

ध्यान

'ध्यान' पद का प्रयोग हम अपने दैनिक जीवन में अनेक बार, अनेक प्रकार से करते हैं। जैसे-

ध्यान नहीं रखेंगे तो बच्चे बिगड़ जाएँगे। यदि ध्यान नहीं रखा जाएगा तो गैस पर रखी सब्जी जल जाएगी, दूध उबल जाएगा । हम चाहते हैं कि लोग हमारी बात ध्यान से सुनें। सभी जन वो चाहे डॉक्टर हो या ड्राइवर, वकील हो या दुकानदार अपना-अपना काम ध्यान से करें।

उक्त उदाहरणों में हम देखते हैं कि ध्यान का प्रयोग विभिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न रूप से किया गया है; जिनमें किसी एक कार्य को सफलता पूर्वक अंजाम देने के लिए मन, वचन और काय की क्रिया को एक दिशा में एकाग्रचित्त पूर्वक करने को कहा जा रहा है।

हम जिस ध्यान की बात कर रहे हैं, उसमें शरीर की समस्त क्रियाओं का निषेध होता है। शरीर से चलना-फिरना, खाना-पीना, सोना सब बंद कर एक जगह शांति से बैठना या खड़े रहना होता है। बोलना भी नहीं होता है। यहाँ तक कि इस अवस्था में मन में सोचने का, विकल्प करने का भी निषेध किया गया है। वास्तविक ध्यान अवस्था तो यही है जिसमें शरीर से कुछ करना नहीं है, वाणी से कुछ बोलना नहीं है और मन से कुछ सोचना नहीं है। यह '**परम ध्यान**' की अवस्था है।

इसप्रकार हम ध्यान अवस्था को दो भागों में विभाजित कर समझ सकते हैं -

(1) ध्यान अवस्था और

(2) परम ध्यान अवस्था

परम ध्यान अवस्था की पूर्व और पश्चात् - दोनों अवस्थाओं को सामान्य तौर पर ध्यान अवस्था ही कहा जाता है। जैसे- मुनि ऋषभदेव 1000 वर्ष तक ध्यान अवस्था में रहे और बाहुबली एक वर्ष तक। जबकि दोनों क्षायिक सम्यग्दृष्टि मुनिराजों को हर अंतर्मुहूर्त में 'परम ध्यान' अवस्था भी होती थी।

परम ध्यान तो शुद्ध भावरूप ही होता है, जबकि ध्यान अवस्था में शुद्ध भाव और शुभ भाव दोनों होते रहते हैं।

परम ध्यान और ध्यान अवस्था का मुख्य अन्तर मन के विकल्पों का होना या न होना है। ध्यान अवस्था विकल्पात्मक व निर्विकल्पात्मक - दोनों रूप रहती है और परम ध्यान अवस्था तो निर्विकल्पात्मक ही होती है।

आत्मानुभूति के पर्यायवाची नाम

'जैन आध्यात्मिक ग्रंथों में अनुभूति, अनुभव, निर्विकल्प आत्मानुभूति, निर्विकल्प-अनुभूति, शुद्धात्मानुभूति, स्वानुभूति, निजानुभूति, स्वानुभवन, निजानुभव, निर्विकल्प अनुभव, आदि को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है।

'आत्मावलोकन' में स्पष्ट रूप से कहा है कि - 'जब ज्ञान दर्शन चारित्र परिणामों से स्व-स्वादरूप अनुभव होता है, तब उन परिणामों को निम्न नाम (संज्ञा) भाव द्वारा कहते हैं - निर्विकल्प दशा, आत्मसन्मुख उपयोग, भावमति, भावश्रुति, स्व संवेदन भाव, स्ववस्तुमग्न, स्वाचरण, स्वस्थिरता, स्वविश्राम, स्वसुख, इंद्रियमन संज्ञा अतीत भाव, शुद्धोपयोग - ये सर्व संज्ञा भाव, स्व अनुभव आदि अनेक संज्ञाएं है परंतु एक स्वस्वादरूप अनुभव दशा अथवा अन्य निर्विकल्प दशा मुख्य जानना।

परम ध्यान

परम ध्यान अवस्था मात्र जानने रूप अवस्था है। परम ध्यान में शरीर से कुछ करना नहीं है, मुँह से कुछ बोलना नहीं है और मन से कुछ सोचना भी नहीं है अर्थात् काय, वचन और मन – तीनों के कार्यों से पूर्ण निवृत्ति।

काया से कुछ करना आहार वर्गणा का कार्य है, वाणी से कुछ बोलना भाषा वर्गणा का कार्य है और मन से कुछ सोचना मनोवर्गणा का कार्य है – यह सब तो पुद्गल की पर्यायें हैं। आत्मा का कार्य तो जानना–देखना है, जो कि ज्ञान–दर्शन गुण की पर्यायें हैं।

परम ध्यान तो एक मात्र जानने रूप ही है। जानना ज्ञान है और जानते रहना, लगातार जानते रहना ध्यान है अर्थात् **ज्ञान का ज्ञान में स्थिर होना ही ध्यान है, परम ध्यान है।**

संसारी अवस्था में चारों गतियों के जीव इस परम ध्यान का स्वाद चख सकते हैं अर्थात् कुछ समय के लिए उन्हें यह ध्यान हो सकता है। मनुष्य गति के जो जीव इस परम ध्यान में लगातार अंतर्मुहूर्त तक टिक जाते हैं; वे सदा परम ध्यान में ही रहते हैं। वे भगवान बन जाते हैं, सदा सुखी रहते हैं और अरिहंत व सिद्ध कहलाते हैं।

जैन दर्शन में ध्यान के चार भेद बताए गए हैं – आर्त–ध्यान, रौद्र–ध्यान, धर्म–ध्यान और शुक्ल–ध्यान।

उक्त चारों ध्यान में से धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान परम ध्यान के भेद हैं।

शुक्ल–ध्यान रूप परम–ध्यान इस पंचम काल में नहीं होता; किन्तु निश्चय धर्म ध्यान रूप परम ध्यान मनुष्य गति में ८ वर्ष से

ऊपर की उम्र वाले किसी भी व्यक्ति को हो सकता है।

पहली बार परम ध्यान जघन्य अंतर्मुहूर्त को ही होता है।

विकल्पातीत होने से परम ध्यान को 'निर्विकल्प ध्यान' भी कहते हैं। यही शुद्धोपयोग है, यही आत्मानुभूति की अवस्था है।

अनुभव की महिमा

अनुभव की महिमा प्रायः सभी ग्रंथों में वर्णित है।

आचार्य अमृतचंद्र अपनी टीकाओं के मंगलाचरण में अनुभव से प्रकाशित होने वाले शुद्धात्मा को ही नमस्कार करते हैं। जैसे–

'नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते' (आत्मख्याति, कलश–१)

स्वोपलब्धि प्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः।।1।। (तत्त्वदीपिका, कलश–१)

नाटक समयसार की उत्थानिका में पंडित बनारसीदासजी अनुभव की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

अनुभौ के रस को रसायन कहत जग,
अनुभौ अभ्यास यह तीरथ की ठौर है।
अनुभौ अधोरसा सौ ऊरध की दौर है,
अनुभौ को स्वाद पंचामृत को कौर है।
अनुभौ करम तोरे परम सौं प्रीति जोरे,
अनुभौ समान न धर्म कोऊ और है।।१९।।

इतना ही नहीं वह तो अनुभव को साक्षात् मोक्ष स्वरूप ही कह देते हैं–

अनुभवचिंतामनि रतन, अनुभव है रस कूप।
अनुभव मारग मोक्ख को, अनुभव मोख स्वरूप।।

× × × × × ×

अव्रतों से पाप का बंध और व्रतों से पुण्य का बंध होता है, उन दोनों का नाश वह मोक्ष है; अतः मोक्षार्थी पुरुष अव्रतों की भांति व्रतों का भी त्याग करे। (बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा 57 की टीका पृष्ट 259)

परम ध्यान से पूर्व की ध्यान अवस्था

ध्यान से पूर्व की अवस्था में सब कुछ हो सकता है – करना होता है, बोलना होता है, सोचना होता है।

जब जीव ध्यान की ओर बढ़ते हैं; तब सर्वप्रथम 'करना' छूटता है, फिर 'बोलना' छूटता है। जैसा कि बाह्य ध्यान मुद्रा से भी स्पष्ट है। ध्यान मुद्रा में शारीरिक सभी क्रियाएँ छोड़कर हाथ पर हाथ रख कर बैठा जाता है, या खड़ा रहा जाता है। मौन रहा जाता है, पर मन में स्व-पर संबंधी अनेक विकल्प चलते रहते हैं।

फिर धीरे-धीरे मन में उठने वाले बाह्य पर संबंधी, यहाँ तक कि देव-शास्त्र-गुरु संबंधी भी विकल्प समाप्त होते हैं और मात्र 'स्व' संबंधी, आत्मा संबंधी विकल्प चलते रहते हैं। अपने उस स्वरूप का चिंतन-मनन चलता रहता है, जिसमें हमें अपनेपन का अहसास होता है।

विकल्पात्मक भूमिका में स्व का उग्र, तीव्र चिंतन चलने पर सहज ही ज्ञान द्वारा ज्ञान का आनंद सहित वेदन होता है। यही निर्विकल्प अनुभूति है, आत्मानुभूति है, परम ध्यान अवस्था है।

प्राथमिक पुरुष की अपेक्षा से सविकल्प अवस्था में विषय और कषाय दूर करने के लिए पंचपरमेष्ठी आदि पर द्रव्य भी ध्येय होते हैं, तत्पश्चात् जब अभ्यास के वश से चित्त स्थिर हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध-एक स्वभावी निज शुद्धात्मा का स्वरूप ही ध्येय हो जाता है।
(बृहद् द्रव्यसंग्रह गाथा 55 की टीका पृष्ट 253)

यदि तुम अनेक प्रकार के विकल्पजाल रहित ध्यान की सिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो, तो इष्ट और अनिष्ट इन्द्रिय विषयों में मोह,राग, और द्वेष न करो। (द्रव्यसंग्रह, गाथा 48)

हे भव्य! कुछ भी चेष्टा मत करो, कुछ भी मत बोलो, कुछ भी चिंतवन मत करो, जिससे आत्मा निजात्मा में तल्लीन रूप से स्थिर हो जाय। यही (आत्मा में लीनता ही) परमध्यान है। (द्रव्यसंग्रह, गाथा-56 गाथार्थः)

परम ध्यान के पश्चात् की अवस्था

परम ध्यान की प्राप्ति के पश्चात् भी जीव की दो अवस्थायें हो सकती हैं –

कुछ जीव परम ध्यान के बाद भी ध्यान अवस्था में ही रहते हैं। जैसे- आदिनाथ और बाहुबली आदि। उनके परम ध्यान से बाहर आने पर 'स्व' या 'पर' कुछ भी ज्ञान के ज्ञेय बन सकते हैं। सहज भाव से जो ज्ञान का ज्ञेय बनता है, वह बनता रहता है। वे पर को 'पर रूप' व स्व को 'स्व रूप' जानते-देखते रहते हैं।

पहली बार परम ध्यान को प्राप्त जीव ध्यान अवस्था से च्युत होता ही है और जब अपनी उस आत्मध्यान की अवस्था का विचार करता है तो उसे अपने उस ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा में ही अपनेपन की अनुभूति होती है और समस्त बाह्य पदार्थों में 'परपना' भासित होने लगता है।

इसप्रकार आत्मा में वास्तविक अपनापन आत्मानुभूतिपूर्वक ही आता है। ज्ञानी को समझ में आता है कि जो ज्ञान में आनंद का वेदन मैंने किया, वही ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा मैं हूँ, 'ये ही मैं हूँ' – ऐसा अपनापन होता है। आत्मा में अपनापन स्थापित होने का नाम ही 'सम्यग्दर्शन' है।

इसीप्रकार वास्तविक भेद विज्ञान भी आत्मानुभूति होने पर ही होता है। जैसे- वही ज्ञानी जीव जब इस प्रकार विचार करता है कि – जो मैंने ज्ञान में आनंद का वेदन किया था 'वही मैं हूँ, अन्य कुछ भी मैं नहीं'- इसप्रकार स्व और पर की स्पष्ट भिन्नता की प्रतीति भी उसे आत्मानुभूति के पश्चात् ही होती है। संक्षेप में कहें तो आत्मानुभूति के पश्चात् ही अपने में अपनापन और पर में परायापन स्थापित होता है।

यही हमारी दृष्टि का 'सम्यक्' होना है। अब तक हमारी जो दृष्टि पर में अपनापन करती थी, यही ज्ञानानुभूति के पश्चात् अपने में अपनापन करने लगती है।

जिसकी दृष्टि सम्यक् हो जाती है, उसे 'सम्यक्-दृष्टि' कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव 'परम आनंद' का स्वाद चख लेते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उन्होंने परम आनंद की प्राप्ति की ओर अपना पहला कदम बढ़ा लिया है। यह चौथे गुणस्थान की अवस्था है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि परम ध्यान में जब ज्ञान ने ज्ञान को जाना तो आत्मा के देखने की दृष्टि बदल गई। उसकी दृष्टि में दो भाग हो गए। जब वह स्व को स्वपने जानने-देखने लगा तो पर में परपना सहज हो गया।

जब ज्ञान ज्ञान को जानता है, तब वेदन आनंद का होता है। यह ज्ञान को ज्ञान द्वारा आनंद सहित जानना ही **अनुभूति** है।

अनुभूति के पश्चात् जब जीव अनुभूति के संबंध में विचार करता है तो वह सोचता है कि मैंने जिस ज्ञान में आनंद का वेदन किया, वह ही मैं हूँ, वही मैं हूँ; अन्य पर द्रव्य मेरे कुछ नहीं - इसप्रकार अनुभूति के पश्चात् अपने में अपनापन होता है। फिर वह सोचता है कि मैंने शुद्ध (pure) आत्मा का अनुभव किया है। अकेले ज्ञान का आनंद सहित अनुभव किया है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र का भेदरूप नहीं - अभेदरूप अखंडपने अनुभव हुआ है। अतः मैं अखंड, एक, शुद्ध, ज्ञानमात्र, चिन्मात्र, ज्योति रूप आत्मा हूँ।

जब वह ऐसे सोचता है तो उसके देखने की दृष्टि बदल जाती है। अब वह समस्त दुनिया को 'पर पने' जानने-देखने लगता है। उसे अपने में अपनापन लगने लगता है। अपने उस आनंद को पाने का बार-बार प्रयत्न करता है।

यद्यपि दुनिया की सारी क्रियायें उस ज्ञानी के जीवन में होती हैं, घटनाएँ घटती हैं, पर वह उदासीन वृत्ति से वह सब करता रहता है, उनमें उसका मन नहीं लगता। अंर्तमन लक्ष्य की पूर्ति का बार-बार चिंतन मनन करते रहता है। अधिक क्या कहें? जब उसे स्वाध्याय, प्रवचन आदि क्रियाओं में भी हेयपना आ जाता है, तब अन्य विषय कषायों की तो बात ही क्या कहना?

इसप्रकार पाप के समान पुण्य क्रियाओं में भी हेयबुद्धि पनपने पर आत्मस्वरूप का चिंतन करते हुए, ध्यान करते हुए ज्ञानी को परमानन्द की प्राप्ति का पुरुषार्थ सहज होता है।

इसलिए पाँचवें गुणस्थानवर्ती जीव जल्दी-जल्दी परम ध्यान में चले जाते है। अतः वे परमानन्द का पान जल्दी-जल्दी करने लगते हैं।

छठें गुणस्थानवर्ती मुनिराज तो इस परम आनंद का पान हर अंर्तमुहूर्त में करते हैं। वे हर अंर्तमुहूर्त में परम ध्यान में चले जाते हैं। जो मुनि उग्र पुरुषार्थ द्वारा लगातार परम ध्यान में लीन हो जाते हैं; वे शाश्वत परम आनंद का पान करते रहते हैं, भगवान बन जाते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक मात्र परम ध्यान अवस्था ही निर्विकल्प अवस्था है। उससे पूर्व की अवस्था विकल्पात्मक अवस्था होती है।

सामान्य तौर पर हम उक्त तीनों अवस्थाओं का एक नाम 'ध्यान' प्रयोग करते हैं। जैसे- मुनिराज बाहुबली एक वर्ष ध्यान अवस्था में रहे। यह ध्यान अवस्था विकल्पात्मक और निर्विकल्पात्मक - दोनों ही रूप थी; क्योंकि वे यदि निर्विकल्प होते ही नहीं तो भावलिंगपना समाप्त हो जाता और अंतर्मुहूर्त से अधिक निर्विकल्प में ठहर जाते तो भगवान बन जाते। जैसा कि एक वर्ष पश्चात् हुआ भी। जब वे उग्र पुरुषार्थ पूर्वक कुछ समय तक लगातार निर्विकल्प में ठहर गए, तो भगवान बन गए।

आत्मानुभूति के पूर्व की प्रक्रिया

1. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान (गृहीत मिथ्यात्व का अभाव)।
2. तत्वार्थ श्रद्धान।
3. स्व-पर का स्वरूप जानना होता है।
4. स्व का विचार होता है।
5. स्व में अहंबुद्धि होती है।
6. आत्मा में निरंतर भेदज्ञान की धारा बहती है। यह धारा प्रथमतः 'मैं देह से भिन्न हूँ' - इसप्रकार भाषा में बहती है, तदुपरांत यह धारा विकल्पों में बहती है , जब इस धारा में निरंतरता बनी रहेगी तब यह ज्ञान में बहेगी, उपयोग में बहेगी, परिणति में बहेगी इसप्रकार यह भेदज्ञान की धारा निरंतर अविरल बहनी चाहिए।
7. इसप्रकार विचार करते-करते विचार रहित ज्ञानानंदमय अवस्था होना ही आत्मलीनता है, आत्मानुभूति है।

परम ध्यानी जीव की प्रवृत्ति

परम ध्यानी जीव की बाह्य प्रवृत्ति (बहिरंग आचरण) को हम चार भागों में समझ सकते हैं :-

1. चौथे गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति
2. पाँचवे गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति
3. छठवें और सातवें गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति
4. सातवें गुणस्थान से सिद्धों तक के जीव की प्रवृत्ति

1. चौथे गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति:- चौथे गुणस्थानवर्ती जीव के जीवन में अन्याय, अनीति और अत्याचार की प्रवृत्ति नहीं होती है। अभक्ष्य पदार्थों का सेवन भी नहीं होता है।

यद्यपि चौथे गुणस्थानवर्ती ज्ञानी जीव का बाह्य जीवन तो सामान्य ही नजर आता है; तदपि उनके अंतरंग में, श्रद्धा में आमूलचूल (पूर्णरूप से) परिवर्तन हो चुका होता है। जिससे पदार्थों को, घटनाओं को, परिस्थितियों को देखने की उनकी दृष्टि बदल जाती है। जिसकी दृष्टि बदल गई, उसकी सृष्टि भी बदल जाती है।

बाह्य दृष्टि से विचार करें तो खाना-पीना, सोना-उठना, इत्यादि क्रियायें उनके जीवन में पूर्ववत् ही होती रहती हैं; पंचेन्द्रियों के विषय भोग भी चलते रहते हैं; किन्तु अन्तरंग में उस परमानन्द की स्मृति के सामने ये सारी खुशियाँ फीकी पड़ जाती हैं।

बाह्य में राग-रंग के व्यवहार भी चलते रहते हैं और अन्तरंग में वीतरागी निर्मल पर्याय भी चलती रहती है। इसप्रकार व्यवहार निभाते हुए वे निश्चय को भी साधते रहते हैं।

यद्यपि वे घर में रहते हुए घर – गृहस्थी के सारे कार्य यथावत् करते रहते हैं, पर उनका ध्यान सदा अपनी आत्मा में ही लगा रहता है। वे आत्महित के कामों में सदा तत्पर रहते हैं, जाग्रत रहते हैं।

यद्यपि हमें वे इन्द्रियों के भोगों में खुश होते नजर आते हैं; पर अंतरंग में वे संतुष्ट नहीं होते। उन्हें **आह्लाद** नहीं होता। अतः उनका मन बार-बार उस परमानन्द को पाने की ओर दौड़ता रहता है। अंतरंग में सदा एक ही धुन चलती रहती है, निरन्तर घोलन चलता रहता है, **तत्व का** चिन्तन चलता रहता है।

उस दुर्लभ परमानन्द के सामने सारे **सहज** उपलब्ध इन्द्रिय आनन्द फीके लगते हैं, धीरे-धीरे छूटने लगते हैं।

इसप्रकार हम देखते हैं कि ज्ञानी जीवों के जीवन में भोग होते हैं, पर भोगों की चाह नहीं होती। वे अपने को पर का कर्ता, भोक्ता नहीं मानते। उन्हें अपने में ही अपनापन होता है, वे अपने ही कर्ता-भोक्ता होते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं, मानते हैं कि कोई किसी का कुछ अच्छा-बुरा नहीं कर सकता है और न ही किसी का किसी से कुछ लेना-देना है। सभी अपने में स्वाधीन हैं।

हम पर में अच्छा-बुरा करने का मात्र विकल्प ही करते रहते हैं; किन्तु हमारे विकल्पों से पर में कुछ अच्छा-बुरा नहीं होता। हाँ, हमारे विकल्पों से हमें कर्मों का बंधन अवश्य होता है। अतः ज्ञानी जीव निरर्थक विकल्प नहीं करते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे जीवन में होने वाली सभी घटनाएँ निश्चित हैं। वे अपने निश्चित क्रम में, निश्चित समय पर, निश्चित निमित्तों पूर्वक होती रहती हैं। अतः वे उन्हें सहज स्वीकार करते रहते हैं, उनकी बुद्धि उनमें फेरफार करने की नहीं होती है। वे अपने जीवन में होनेवाली घटनाओं-दुर्घटनाओं

को आकुल-व्याकुल रहित शांतिपूर्वक सहज जानते रहते हैं, उनसे जुड़ते नहीं हैं। वे तो सभी परिस्थितियों में तत्व चिन्तन करते हुए बस अपने में ही मग्न रहते हैं।

2. पाँचवें गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति – रुचि की तीव्रता और पुरुषार्थ की उग्रता से परमानन्द का पान उस जीव को जब जल्दी-जल्दी होने लगता है, तब बाह्य जीवन में भी परिवर्तन दिखने लगता है। यह पाँचवे गुणस्थान की अवस्था है। इस गुणस्थान में अंतरंग में शुद्धि की वृद्धि के साथ-साथ बाह्य आचरण में भी त्याग की शृंखला आरंभ हो जाती है; जिसे जैन शास्त्रों में ग्यारह प्रतिमाओं में बाँटा गया है। इन प्रतिमाओं में अंतरंग में तो परमानन्द की अवस्था बढ़ती जाती है, जल्दी-जल्दी होने लगती है और बाह्य में त्याग की प्रधानता होती है।

3. छठवें और सातवें गुणस्थानवर्ती जीव की प्रवृत्ति – जब परमध्यान अवस्था प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में होने लगती है, तब जीव बाह्य में समस्त परिग्रह का त्याग कर मुनिव्रत धारण कर लेते हैं।

जब मुनिराज आत्मलीनता की परमध्यान की अवस्था में होते हैं तो सातवाँ गुणस्थान होता है और जब उपयोग बाहर आता है तो छटवाँ गुणस्थान होता है। परमध्यान से बाहर आने पर ध्यान अवस्था में सहज रूप से जो जानने में आता है, वे उसे जानते रहते हैं। वह मात्र उनके ज्ञान का ज्ञेय बनता रहता है। ध्यान अवस्था से भी बाहर आने पर मुख्य रूप से तो उनको आत्मा का ही चिन्तन, मनन, घोलन चलता रहता है।

इस गुणस्थान में सभी मुनिराजों का आहार-विहार, उपदेश आदि क्रियायें होती हैं। शास्त्रों का पठन-पाठन, लेखन आदि सभी

इस गुणस्थान में होता है।

4. सातवें से सिद्धों तक के जीव की प्रवृत्ति – सातवें से सिद्धों तक के सभी जीव परमानन्द में ही मग्न रहते हैं। विशेष इतना सातवें से ग्यारहवे तक के उपशम श्रेणी वाले जीव परमध्यान अवस्था से च्युत होकर (गिरकर) नीचे के गुणस्थानों में चले जाते हैं; किन्तु क्षपक श्रेणी वाले जीव, अर्हंत और सिद्ध सभी परमध्यान अवस्था से कभी च्युत नहीं होते, गिरते नहीं; हमेशा परमानन्द का रसपान करते रहते हैं।

अनुभूति के स्तर

आत्मानुभूति प्राप्ति के दो स्तर हैं –

1. अन्वेषण काल 2. आराधन काल

पहले स्तर पर आत्मा की खोज की जाती है। इस स्टेज में आत्मा का स्वरूप, शुद्धात्मा का स्वरूप, नय-प्रमाण द्वारा युक्ति पूर्वक जाना जाता है। इसके पश्चात् आराधन का काल आरंभ होता है। आराधन काल अर्थात् अनुभव का काल।

अनुभव के काल में नय-प्रमाण नहीं होते ;क्योंकि उस समय प्रत्यक्ष अनुभव होता है। जैसे जब हम कोई भी वस्तु कपड़े, जेवर आदि खरीदने जाते हैं ; तो खरीदते समय अनेक विकल्प होते है। जब उन कपड़े, जेवर आदि का उपयोग काल होता है, तब अच्छे-बुरे, चुनने आदि के कोई विकल्प नहीं रहता,पहनने का आनंद रहता है।

इसप्रकार सविकल्प द्वारा निर्विकल्प अनुभव होता है।

इसे बृहदनयचक्र में निम्नप्रकार कहा गया है :-

तच्चाणे सणकाले समयं बुझेहि णुतिमग्गेण।
णो आराहणसमये पच्चक्खो अणु हवो जह्मा।।266।।

अर्थ :- तत्त्व के अवलोकन (अन्वेषण) का जो काल उसमें समय अर्थात् शुद्धात्मा को युक्ति (नय-प्रमाण) द्वारा पहले जाने। पश्चात् आराधन समय जो अनुभव काल उसमें नय-प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभव है।

अनुभूति का स्वरूप

विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न दृष्टि से अनुभूति की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं–

1. अन्तरोन्मुखी वृत्ति द्वारा आत्म साक्षात्कार की स्थिति का नाम ही आत्मानुभूति है।[1]

2. स्वसंवेदन गम्य आत्म-सुख का वेदन ही स्वानुभव है।[2]

3. वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम।
रसस्वादत सुख ऊपजे अनुभौ ताको नाम।।[3]

अर्थात् आत्मपदार्थ के ध्यान करने से, चित्त को जो शांति मिलती है, तथा आत्मिक रस का आस्वादन करने से जो आनंद मिलता है, उसी को अनुभव कहते हैं।

यह अनुभव दो प्रकार का होता है – **सविकल्प और निर्विकल्प**।

विचार श्रेणी में प्रवेश करते ही व्यक्ति को वस्तु के बारे में नाना प्रकार के विकल्प सताने लगते हैं। वह कभी कुछ सोचता है, तो कभी कुछ। कभी किसी बात को सही मानता है, तो कभी उसके विपरीत बात को, तो कभी निर्णय ही नहीं कर पाता कि आखिर सही स्थिति क्या है?

इसप्रकार अनेक विकल्प वस्तु के बारे में उत्पन्न होते हैं। वस्तु के स्वरूप का ज्ञान भी हम इन्हीं विकल्पों के माध्यम से करते हैं अर्थात् वस्तु के बारे में हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं, वह सारी अनुभूति विकल्पों के माध्यम से ही होती है।

---

1. मैं कौन हूँ; डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ 17, संस्करण 1975
2. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग-1, पृष्ठ 82
3. नाटक समयसार, कविवर बनारसीदासजी, उत्थानिका छन्द

हमारे सामने प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कभी विकल्पों से रहित निर्विकल्प अनुभूति हो सकती है? क्या हम शास्त्रों में वर्णित निर्विकल्प आत्मानुभूति की प्राप्ति और सिद्धि अपने जीवन में कर सकते हैं या सिर्फ उसकी सिद्धि शास्त्रों एवं आध्यात्मिक संतों के अनुभवों से ही संभव है? ऐसे ही अनेकों प्रश्न विकल्पों के द्वारा वस्तु स्वरूप की अनुभूति कराने वाले विकल्पों के माध्यम से ही हमारे चंचल मस्तिष्क में मंडराते रहते हैं।

शास्त्रों पर एकदम अविश्वास कर नहीं पाते, स्वयं कभी विकल्पों से परे निर्विकल्प आत्मानुभूति हुई नहीं है; अपितु हर क्षण अपने को विकल्पों से घिरा हुआ ही पाया है। अतः प्रत्यक्ष अनुभूति विपरीत होने से निर्विकल्प आत्मानुभूति की तो चर्चा ही दूर निर्विकल्प अनुभूति भी हो सकती है– यही असंभव सा प्रतीत होता है तथा निर्विकल्प आत्मानुभूति को कोरी बकवास समझते हुए विकल्पों के भंवर में डोलते हुए मानव जीवन का अमूल्य समय सिर्फ उलझनों में ही 'अ–मूल्य' (मूल्य रहित) होता जाता है।

निर्विकल्प आत्मानुभूति को नकारने वाले जन प्राय: यह प्रश्न करते पाए जाते हैं कि 'समाधि की अवस्था में निर्विकल्प आत्मानुभूति कैसे हो सकती है?' कोई भी अवस्था हो हम विकल्पों से परे रह ही नहीं सकते। हमारा मस्तिष्क तो हमेशा कुछ न कुछ सोचता ही रहता है; कुछ ना सोचे यह कैसे हो सकता है? ऐसा कहने वाले जन मानव जीवन की उस अवस्था पर ध्यान नहीं देते, जिस दशा में वह बहुत कुछ सोच रहा होता है; किन्तु पूँछने पर उसका उत्तर होता है – नहीं, मैं कुछ नहीं सोच रहा। यहाँ यह बात नहीं है कि

वह व्यक्ति झूठ बोल रहा है या हमसे कुछ छुपाना चाहता है; पर वास्तविकता यह है कि वह स्वयं ही नहीं समझ पाता कि वह क्या सोच रहा है? उस विचार की परिपूर्ण अभिव्यक्ति तो दूर वह उसकी हल्की सी झलक भी नहीं दिखा सकता; अल्प शब्दों में बाँध नहीं सकता और ना ही कोई रेखाचित्र ही खींच सकता है। बड़ी अजीब स्थिति होती है? बड़ी ही अनोखी दशा। फिर जो स्वयं ही स्वयं को ना समझ पाए तो दूसरों को अपने बारे में क्या बताए? ऐसी निर्विचार स्थिति की अनुभूति हम सबने अनेकों बार की है; अतः उक्त आशंका निरर्थक है। अस्तु, जो भी हो; प्रस्तुत प्रकरण में यह हमारी चर्चा का विषय नहीं है। हमारा विषय है– सविकल्प और निर्विकल्प दशा (अवस्था) में क्या अन्तर है?

सविकल्प दशा – इस दशा में ज्ञान अनेकों ज्ञेयों को जानता है और नाना प्रकार के विकल्प करता है।

नाना प्रकार के विकल्पों से तात्पर्य जीव के ही स्वरूप के बारे में अनेक प्रकार से सोचने से है, न कि अन्य विषयों के बारे में विचार करने से। जैसे– जीव स्पष्ट रूप से पृथक् पुद्गलों से भिन्न है, वह आत्मा के साथ एकक्षेत्रावगाही सम्बन्ध रखने वाले शरीर से भी भिन्न है तथा वह आत्मा में उत्पन्न होने वाले विकारी व अविकारी भावों से भी भिन्न ज्ञान–दर्शनमय है, आनंद स्वरूप है। इसप्रकार के विकल्प जिस दशा में होते हैं वही दशा सविकल्प दशा है।

निर्विकल्प दशा – इस दशा में मात्र जानता है और इसमें मात्र स्वरूप में ही तादात्म्यरूप से प्रवृत्ति होती है।

जब आत्मा एक मात्र आत्म स्वरूप में ही मग्न हो जाता है; तब विकल्प उठना बंद हो जाते हैं। इस अवस्था में ध्याता-ध्येय व ज्ञाता-ज्ञेय का भी भेद नहीं रहता, यही दशा निर्विकल्प अनुभव की दशा है।

संक्षेप में कहें तो नाना प्रकार के विकल्पों से रहित आत्मा की अनुभूति ही निर्विकल्प अनुभूति है। जैसे बच्चे ने पहले किसी से मिश्री के आकार-प्रकार, कलर, स्वाद, आदि से उसके स्वरूप के बारे में जाना और निर्णय किया कि 'मिश्री मीठी होती है'; फिर जब उसने मिश्री का स्वाद लिया तो उसकी मिठास उसे 'स्वाद प्रत्यक्ष' हुई। जिस समय स्वाद का आंनद लिया जाता है; उस समय आकार, रंग आदि के सभी विकल्प नहीं रहते हैं। मात्र मिठास के स्वाद के आनंद का वेदन होता है। वैसे ही शास्त्रों से आत्मा का स्वरूप समझकर, विकल्पात्मक ज्ञान में जाना, निर्णय किया कि आत्मा ज्ञान मात्र है, ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं।

इसप्रकार विकल्पात्मक ज्ञान में आत्मा का सही स्वरूप जानने पर, उसे निजस्वरूप मानने पर उसमें तीव्र रुचि का वेग जागृत होने पर आत्मा में 'यही मैं हूँ'; 'जो जानने वाला है, वही मैं हूँ' –ऐसी स्वीकारोक्ति आ जाती है, तब पुनः-पुनः उपयोग वहीं लगता है, परिणाम स्वतः वहीं मग्न हो जाते हैं। इसी धुन में परिणाम ज्ञान स्वरूप में मग्न हो जाते हैं और तत्क्षण ही आनंद के साथ ज्ञान का वेदन होता है। यही अतीन्द्रिय आनंद है, यही आत्मानुभूति है, निर्विकल्प अनुभूति है।

यहाँ विशेष बात ध्यान देने की यह है कि जब तक **'यही' और 'मैं', 'जानने वाला' और 'मैं'– इसप्रकार का दोपना (भेद) हमारे विचारों में चलता रहेगा, तब तक निर्विकल्प अनुभूति नहीं होगी; अपितु अभेद**

आत्मा में भेद करने के कारण उक्त चिंतन व्यवहार की श्रेणी में ही जायेगा। फिर रुचि की तीव्रता और उग्र पुरुषार्थ द्वारा ज्ञान मात्र का आनंद सहित अनुभव होता है। यही निर्विकल्प अनुभव है।

इस अनुभव के समय आत्मा के प्रदेश, आकार, नय, प्रमाण आदि के कुछ भी विकल्प नहीं रहते; मात्र ज्ञान में आनंद का वेदन होता है, अनुभव होता है, अनुभूति होती है। इसे ही **निर्विकल्प अनुभूति** कहते हैं। स्वरूप में परिणाम मग्न होने से इसे ही **स्वानुभव प्रत्यक्ष** कहते हैं।

इसप्रकार स्पष्ट है कि जब आत्मा अपने आत्म स्वरूप का निश्चय करके पंचेन्द्रियों व मन द्वारा बाह्य विषयों में प्रवर्त्तमान ज्ञान को स्वसन्मुख करता है, तब आत्मा की अनुभूति होती है। इस संदर्भ में रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा पण्डित टोडरमलजी का निम्न कथन दृष्टव्य है–

जैसे– ''कोई जीव स्वरूप का ध्यान करे तो वह सर्वप्रथम स्व-पर का भेद-विज्ञान करे तदनन्तर नो-कर्म, द्रव्यकर्म, भाव-कर्म रहित केवल चैतन्य चमत्कार मात्र अपना स्वरूप जाने, पश्चात् पर का विचार भी छूट जाए, केवल स्वात्म विचार ही रहता है। तब वह अनेक प्रकार से अपने स्वरूप में अहं बुद्धि करता है, जैसे– मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, आनंद का पिंड हूँ आदि। इसप्रकार अनेक प्रकार से आत्मा के बारे में विचार करता है; किंतु जब यह विचार भी छूट जाए, मात्र एक चैतन्य स्वरूप आत्मा ही का ध्यान करे, जहाँ ध्याता-ध्येय, ज्ञाता-ज्ञेय का भेद न रहे, वह दशा ही निर्विकल्प अनुभव की दशा है। अनुभव के समय नय, प्रमाण आदि का भेद नहीं रहता है, क्योंकि अनुभव तो प्रत्यक्ष का विषय है।''

जो ज्ञान पूर्व में पाँच इंद्रियों व मन के द्वारा बाह्य स्पर्श आदि में प्रवर्त्तता था, वही निर्विकल्प अनुभव के समय केवल स्वरूप सन्मुख हुआ; अतःइन्द्रियों के स्वभाव स्पर्श आदि रूप नहीं प्रवृत्ता। इसीलिए निर्विकल्प अनुभव को **अतीन्द्रिय** कहते हैं।

यद्यपि जो ज्ञान इंद्रिय और मन में प्रवर्त्तता है, वही अनुभव के समय में प्रवर्त्तता है तथापि वह ज्ञान इंद्रियों के स्वभाव स्पर्श आदि तथा मन के स्वभाव विकल्प रूप में नहीं वर्तता, अतःवह ज्ञान अतीन्द्रिय कहलाता है।

निर्विकल्प अनुभव से प्राप्त आनंद इंद्रिय आनंद से विलक्षण व वचनातीत है। अतः वह अतीन्द्रिय कहलाता है।

अनुभूति 'निर्विकल्प' आत्मानुभूति नाम तभी पाती है, जबकि वह ''मैं ही यह आत्मा हूँ, मैं ही इसकी अनुभूति करने वाला हूँ।'' इसप्रकार के विकल्पों से दूर रहकर निर्विकल्प होकर ज्ञान, ज्ञान की ओर उन्मुख होता है; तब वह आनन्दसहित ज्ञान की अनुभूति 'आत्मानुभूति' कही जाती है।

आत्मा की अनुभूति का सम्यक्तया दर्शन तभी होता है जबकि जीव श्रुतज्ञान के अवलंबन से ज्ञान स्वभाव आत्मा का निश्चय करके आत्मा की प्रसिद्धि के लिए पर प्रसिद्धि के कारणभूत इंद्रिय व मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियों को मर्यादा में लेकर, आत्मोन्मुख करके मति ज्ञान तत्व को आत्मसम्मुख करता हुआ, नाना प्रकार के नय पक्षों के अवलंबन से होने वाले अनेक विकल्पों के द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा

में लेकर श्रुतज्ञान तत्व को भी आत्म सम्मुख करता हुआ, अत्यंत विकल्प रहित होकर, तत्काल निजरस से प्रकट होता हुआ आदि, मध्य और अंत से रहित अनाकुल, केवल, एक, संपूर्ण ही विश्व पर मानो तैरता हो, ऐसे अखंड प्रतिभासमय, अनंत, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसार का अनुभव करता है।[1]

इसप्रकार शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत भाव नष्ट हो जाता है। इसे ही समयसार कलश में कहा है कि-

''समस्त भेदों को गौण करने वाले तेज:पुंज आत्मा का अनुभव होने पर नयों की लक्ष्मी उदित ही नहीं होती, प्रमाण अस्त हो जाते हैं, निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, पता ही नही चलता और क्या कहें, द्वैत ही भासित नहीं होता।''[2]

स्वानुभव में आत्मा प्रत्यक्ष है या परोक्ष इसे रहस्यपूर्ण चिट्ठी में पं. टोडरमल जी ने स्वयं ही स्पष्ट किया है - 'स्वानुभव में आत्मा को श्रुतज्ञान द्वारा जाना जाता है। श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है, और यह दोनों ज्ञान परोक्ष हैं, अतः आत्मा का जानना प्रत्यक्ष नहीं है।

अवधि, मनःपर्यय व केवलज्ञान प्रत्यक्ष हैं; किन्तु इनसे भी आत्मा नहीं जाना जा सकता है; क्योंकि अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान का विषय रूपी पदार्थ हैं तथा केवलज्ञान छद्मस्थ के होता नहीं है।

आगम, अनुमान आदि से आत्मा का अनुभव होता है; अतः

1. समयसार गाथा-144 की अमृतचन्द्रीय टीका के आधार पर
2. समयसार कलश-9 के आधार पर

वह परोक्ष ही है। दूसरी बात अनुभव में आत्मा के प्रदेश-आकार भासित नहीं होते। अतः वह परोक्ष ही है।

इसप्रकार अनुभव में आत्मा परोक्ष होते हुए प्रत्यक्ष भी है; क्योंकि स्वरूप में परिणामों के मग्न होने से जो स्वानुभव हुआ, वह **स्वानुभव प्रत्यक्ष** है। स्वानुभव का आस्वाद वह आगम,अनुमान आदि परोक्ष प्रमाणों से नहीं, वरन् अपने अनुभव से ही लेता है, अतः इस दृष्टि से वह प्रत्यक्ष है अथवा जो प्रत्यक्ष की भांति हो उसे भी प्रत्यक्ष कहते हैं। जैसे मैंने उसे स्वप्न में प्रत्यक्ष देखा। यहाँ कोई प्रत्यक्ष नहीं है, पर प्रत्यक्षवत् होने से प्रत्यक्ष कहा है। ऐसे ही अनुभव में आत्मा प्रत्यक्ष की भांति यथार्थ प्रतिभासित होता है, अतः इस दृष्टि से भी आत्मा का प्रत्यक्ष जानना होता है।'

इसप्रकार स्पष्ट हुआ कि वैसे स्वानुभव में आत्मा परोक्ष है; किन्तु जो परिणाम से स्वाद आया, वह स्वाद प्रत्यक्ष है।

जबतक यह स्वानुभव नहीं होता, तबतक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती और सम्यक्त्व की प्राप्ति के बिना मोक्ष भी नहीं होता अर्थात् निर्विकल्प आत्मानुभूति मुक्ति का कारण है।

आत्मानुभूति को मुक्ति का कारण बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि - ''जो मुनि परद्रव्य से पराङ्गमुख होकर निजात्म द्रव्य का ध्यान करते हैं, वह सम्यक् चारित्र से युक्त होते हुए वे निर्वाण को प्राप्त करते हैं।'' - मोक्षपाहुड़, गाथा-19

आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं कि - ''निजरस से परिपूर्ण स्वभाव में निश्चल होने वाला मुनि शीघ्र ही कर्मों से छूटता है व मुक्ति को प्राप्त करता है।'' - समयसार कलश 190

नाटक समयसार में भी कविवर पंडित बनारसीदास जी ने यही भाव प्रकट किया है -

जो अविकल्पी अनुभवी, सुद्ध चेतना युक्त।
ते मुनिवर लघु काल में होहिं करम सों मुक्त।।३११

अतःस्पष्ट है कि हमें अपना ध्येय निर्विकल्प आत्मानुभूति को बनाना चाहिए; क्योंकि यही परिपूर्ण सुखी अवस्था को प्राप्त करने का साधन है।

न केवल परिपूर्ण सुख; वरन अल्प सुख भी, यहाँ तक की सुखाभास भी हमें निर्विकल्प अवस्था में ही होता है। जब तक हम विचारों में, विकल्पों में घिरे रहते हैं, तब तक हममें उद्विग्नता का वास रहता है, लेकिन जब कभी हमें एकाध क्षण किन्हीं विशेष विचार में मग्न होने पर, उन विचारों की अनभिव्यक्ति की दशा में निर्विकल्पता का आभास होता है तो हमें किंचित् सुख का आभास भी होता है। यही कारण है कि जब व्यक्ति विचारों से विकल्पों से ज्यादा परेशान हो उठता है, तो वह उन विकल्पों व विचारों से भागने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भागता फिरता है। येन केन प्रकारेण उन विचारों से मुक्ति की चाह रखता है। इसप्रकार वह सुख की तलाश विचारों में नहीं निर्विचार में ही तो करता है। जब साधारण लौकिक शांति की खोज भी विकल्पों से परे चलती है तो फिर अलौकिक, पारमार्थिक, स्थाई शांति विकल्पों में कैसे प्राप्त हो? विकल्पों के माध्यम से उस तक पहुँचा अवश्य जा सकता है, पर अंत में संपूर्ण विकल्पों को छोड़ना ही पड़ेगा।

इसप्रकार हम देखते हैं कि जब आत्मा ध्रुव आत्मतत्व को अपनी दृष्टि का विषय बनाता है, तब वह शीघ्र ही पर्याय से भी शुद्धात्म हो अविनाशी पद को प्राप्त करता है। अभिनंदनीय, अविनाशी इस पद को विभूषित करने वाली उस आत्मा का अभिषेक करने को इंद्र भी मचल उठता है।

लेकिन यह अवस्था प्राप्त होती है निरावरित (शरीर के सभी आवरणों से, वस्त्रों से रहित) जीवन को अपनाकर ही। यद्यपि आत्मानुभूति गृहस्थ जीवन में भी हो सकती है, किंतु वह परिपूर्ण सुखी अवस्था नहीं। अतः स्पष्ट है कि जो व्यक्ति निरावरित जीवन अपना कर शुद्धात्मा की अनुभूति करता है, तब वह शीघ्र ही मुक्ति रमा का वरण करता है।

सभी जीव परम ध्यान का स्वरूप समझ कर परम आनंद की प्राप्ति की ओर अपने कदम बढ़ाएँ – ऐसी मेरी भावना है।

–डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

●

पर में अपनेपन को राग कहते हैं,
अपने में अपनेपन को राग नहीं कहते हैं ।
जिसे अपना समझते है उसमें अपनापन होता है,
जिसे पर समझते है, उसमें अपनापन नहीं परायापन होता है।
इसलिए हमें क्या स्व है क्या पर है ये समझना है, जानना है, पहचानना है।
जब हमें स्व और पर की सही पहचान होगी,तब स्व में लीनता सहज होगी, परम ध्यान सहज होगा।

निर्विकल्प–यह शब्द 'निर्' व 'वि' उपसर्ग पूर्वक कृप् धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर बना हुआ है। उपसर्ग धातु के पूर्व लगकर विशेष अर्थों का प्रकाशन करते हैं। निर् उपसर्ग धातु के पूर्व में लगकर वियोग, ध्वंस, दूर, रहित आदि अर्थों को बताता है।

'कृप्' धातु रचना करना व कल्पना करना अर्थ में प्रयुक्त होती है।

जब हम किसी वस्तु के बारे में एक निश्चय पर नहीं पहुँच पाते व उसके बारे में नाना विचार बनाते हैं, कल्पना करते हैं, तो उस वस्तु के बारे में बनाए गए उन नाना विचारों व कल्पनाओं को 'विकल्प' नाम से अभिहित किया जाता है।

जो अनुभूति यह अच्छा है, यह बुरा है – आदि रागात्मक विकल्पों से रहित हो वह निर्विकल्प है।

'अनुभूति' शब्द 'अनु' उपसर्ग पूर्वक 'भू' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। जिसका अर्थ अनुभव, परिज्ञान, पहिचान होता है तथा न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष प्राप्त ज्ञान अनुभूति है।

'आत्मा' आत्मन् शब्द का प्रथमा विभक्ति का एकवचन का रूप है। यह सामान्यतः अचेतन पदार्थों से विपरीत चेतन अर्थ में प्रयुक्त होता है। विभिन्न दर्शनों में इसके विभिन्न लक्षण दिए गए हैं। जैन दर्शन में शुद्ध चैतन्य ही इसका लक्षण है। ज्ञान–दर्शन आदि अनेक गुण इसमें पाए जाते हैं।

'अत्' धातु का अर्थ सतत् गमन है। यहाँ 'गमन' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' होता है; क्योंकि सब गति रूप अर्थ वाली धातु ज्ञान रूप अर्थ वाली होती हैं– ऐसा वचन है। इस कारण यथासंभव ज्ञान, सुख आदि गुणों में 'आ' अर्थात सर्व प्रकार से 'अतति:' अर्थात् वर्तता है, वह आत्मा है अथवा शुभ–अशुभ, मन–वचन–काय की क्रिया द्वारा यथासंभव तीव्र–मन्दादि रूप से जो 'आ' अर्थात् पूर्ण रूप से वर्तता है, वह आत्मा है अथवा उत्पाद व्यय और धौव्य– इन तीनों धर्मों द्वारा जो 'आ' अर्थात् पूर्ण रूप से अतति अर्थात वर्तता है,वह आत्मा है।

इसप्रकार 'नाना विकल्पों से रहित आत्मा की अनुभूति ही आत्मानुभूति है, निर्विकल्प अनुभूति है।

लेखिका की अन्य कृतियाँ

01. जैन नर्सरी (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
02. जैन के.जी. भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
03. जैन के.जी. भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
04. जैन के.जी. भाग-3 (हिन्दी, अंग्रेजी, गुज. मराठी, तमिल)
50-06. जैन कलर बुक भाग 1-2 (ड्राइंग बुक)
07-10. जैन जी.के. भाग-1 से 4 तक (हिन्दी, अंग्रेजी)
11-16. जैन जी.के. भाग-5 से 10 तक (हिन्दी)
17-18. चलो पाठशाला, चलो सिनेमा भाग 1-2
19. सीखें हम गाते-गाते
20. शब्दों की रेल
21-23. आगम प्रवेश भाग-1,2,3
24. मुझमें भी एक दशानन रहता है
25. संस्कार का चमत्कार (दादी की कहानी)
26. बढ़ते कदम
17. राम कहानी
28. विचार के पत्र : विकार के नाम
29. तलाश : सुख की
30. मुक्ति की युक्ति
31. एक संभावना यह भी
32. सत्ता का सुख
33. बालबोध प्रशिक्षण गाईड
34. प्रवेशिका प्रशिक्षण गाईड
35. अर्चना गाईड
36. नयचक्र गाईड (अध्यात्म के नय)
37. आगम के नय
38. अनुपम खोज (सप्तभंगी टीका)
39. उपादान निमित्त दोहा (टीका)
40. परीक्षामुख प्रवेशिका (टीका)
41. प्रमाणज्ञान
42. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान
43. आत्मानुभूति कैसे?
44. जैनदर्शनसार
45. आचार्य अमृतचन्द्र और उनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (लघु शोध)
46. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार : एक समालोचनात्मक अध्ययन (शोध प्रबंध)
47. मिनी समयसार
48. समयसार प्रश्नोत्तरमाला भाग-1
49-51. परमागम प्रवेशिका भाग-1, 2, 3/4
52. मीडियम समयसार : भाग-1
53. आनंद एक : रूप अनेक
54. बढ़ते कदम : परमागम की ओर

जैन गेम्स

1. नो टाइम पास
2. हमारी लाईफ
3. लगे रहो जीवराज
4. चौबीसी (Poster)
5. Maze to Moksh

E-books

01. मिनी समयसार भाग -1
02. मिनी समयसार भाग -2
03. परमागम प्रवेशिका भाग - 1
04. परमागम प्रवेशिका भाग - 2
05. परमागम प्रवेशिका भाग - 3
06. परमागम प्रवेशिका भाग - 4
07. मीडियम समयसार भाग - 1
08. प्रमाणज्ञान : सम्यग्ज्ञान
09. समयसार प्रश्नोत्तरमाला : भाग-1
10. आनंद एक : रूप अनेक
11. बढ़ते कदम : परमागम की ओर